National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 2; May 2017; Page No. 108-109

काव्यशास्त्र में अलंकार

डॉ0 अशोक कुमार दुबे

एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत, बी0एस0एन0वी0पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ यूनिवर्सिटी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

शरीर की सुन्दरता को बढ़ाने के लिए जिस प्रकार मनुष्य ने भिन्न भिन्न प्रकार के आभूषणों का प्रयोग किया, उसी प्रकार उसने भाषा को सुन्दर बनाने के लिये अलंकारों की योजना की। अपनी बात को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए चमत्कार अथवा रमणीयता का आश्रय लेना पड़ता है, उसी प्रकार, काव्य को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए चमत्कार अथवा रमणीयता का आश्रय लेना पड़ता है, यही रमणीयता अथवा चमत्कार काव्य में 'अलंकार' कहलाता है। 'अलंकार' हमारी आत्मप्रदर्शन तथा आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति के परिणाम हैः हमारी यह प्रवृत्ति पुरातन है। वास्तव कें यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि इस प्रवृत्ति का उदय मानव जन्म के साथ ही हुआ है। क्योंकि मानव ह्रदय में भाव तथा मनोवेग उत्पन्न होते हैं और उनको अभिव्यक्त करने के लिए वाणी निरन्तर सचेष्ट रहती है। भावाभिव्यंजन के लिए, अपने कथ्य को अधिक आकर्षक और चमत्कारी बनाने के लिये हम वाणी को अलंकार धारण कराते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अलंकार मनुष्य के मनोवेगों को चमत्कारी रूप में प्रकट करने का एक साधन है इस प्रकार सिद्ध यह होता है कि अलंकार वाणी के विभूषण हैं। इनके द्वारा अभिव्यक्ति के स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौन्दर्य का सम्पादन होता है। स्पष्टता और प्रभावोत्पादन के हेतु वाणी अलंकार का रूप धारण करती है। इसलिए काव्य में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। वाणी को अलंकृत करना ही अलंकारों का ध्येय है। ये काव्य के वही स्थान है जो शरीर के लिये लौकिक आभूषणों का। जिस प्रकार आभूषण साक्षात् सम्बन्ध से शरीर की शोभा वृद्धि करते हैं और साथ ही साथ आत्मा को भी प्रफुल्लित करते हैं, वैसे ही काव्य के अलंकार भी साक्षात् सम्बन्ध से काव्य के शरीर शब्द और अर्थ को अलंकृत करते हैं तथा परम्परा सम्बन्ध से काव्य की आत्मा को पुष्ट करते है।

'अलंकार' शब्द की व्युत्पत्ति एवं लक्षण अलंकार शब्द की रचना 'अलम्' तथा 'कृ' धातु से हुई है, इस अलंकार शब्द का अर्थ है सजावट । अलंकार शब्द में 'अलं' और 'कार' दो शब्द हैं। अलं का अर्थ है– भूषण अर्थात् जो अलंकृत करे वह अलंकार है अलङ्करोतीति अलंकारः । अथवा अलंक्रियते अनेनेत्यलंकार।। जिसके द्वारा किसी की शोभा होती है वह अलंकार है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार अलंकार के कर्ता या विधायक है। द्वितीय के अनुसार वे साधन मात्र हैं। अलंकार के सर्वसम्मत अर्थ की दृष्टि से द्वितीय व्युत्पत्ति अधिक संगत है, जिसके अनुसार अलंकार काव्य की शोभा का साधन मात्र हैं।

काव्यशोभाकरानधर्माऽनलङ्कारान् प्रचक्षते।[1]
काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः ।।

दण्डी ने काव्य शोभा के विधायक रूप में अलंकारों को महत्त्व दिया है। *काव्यशोभाकरान धर्मानलंकारान् प्रचक्षते* यहाँ अलंकार काव्य के समय सौन्दर्य के रूप में तथा 2 इसी सौन्दर्य के उपकरण के रूप में ग्रहण किया गया है। आचार्य वामन ने अलंकार को सौन्दर्य का पर्यायवाची माना है। उनका कथन है– काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। ''सौन्दर्यमलङ्कारः।[2]'' उनका स्पष्ट आशय यह है कि अलड.कार गुणों का उत्कर्ष करते हैं, को बढ़ाते हैं। स्वयं काव्य के साध्य न होकर वे साधन हैं। आचार्य भामह के अनुसार 'शब्द और अर्थ का वैचि×य ही अलड.कार है– *वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृतिः* अर्थात् लोकोत्तर चमत्कार के उत्पादक शब्द और अर्थ के वक्रत्व अथवा वैचित्र्य को विशिष्ट अलड.कार कहते हैं। आचार्यो की अलड.कार–विषयक मान्यतायें भिन्न–भिन्न हैं, परिणामस्वरूप परवर्ती काल में काव्यशास्त्रियों का एक पक्ष काव्य के लिए अलड.कारों को अनिवार्य मानता हैं और दूसरा पक्ष गौण।

1 ध्वनिवादी आनन्दवर्धन ने अलड.कारवादियों के अलड.कार के अडि.त्व पर प्रहार करते हुए कहा है कि 'अलड.कारों का विधान' रसादि के अंग रूप से होना चाहिए न कि अङ्गी रूप से–

'विवक्षा तत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन।[3]'

आचार्य कुन्तक ने 'सालंकारस्य काव्यता' ाका प्रतिपादन कर अलड.कार को काव्य का अविभाज्य अंग माना है।[4]

आचार्य मस्मट रसवादी आचार्य हैं, वे अलड.कारों का उदेद्श्य रस को पुष्ट करना मानते हैं। तदनुसार उनका अलड.कार का लक्षण इस प्रकार है–

उपकुर्वन्ति तं सन्तं यऽड.द्वारेण जातुचित्
हारादिवदलड. कारास्तेऽनुप्रासोपमादयोः।।[5]

अलड.कार आदि आभूषणों के समान है और वे रस के उपकारक हैं। यही नहीं मम्मट ने अपने काव्य के लक्षण में 'अनलंकृती पुनः क्वापि' लिख–कर काव्य में अलड.कारों को अनिवार्य उपयोगिता के आग्रह को समाप्त कर दिया था। किन्तु अलड.कारवादी आचार्य जयदेव ने मम्मट की इस मान्यता का उपहासात्मक विरोध करते हुए लिखा है कि 'जो काव्य को अलड.कार रहित मानता है, तो अपने को पण्डित मानने वाला वह व्यक्ति अग्नि को उष्णतारहित क्यों नहीं मानता'–

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मावनुष्णमनलंकृती।[6]

भामह भी अलड.कारवादी हैं उनका मत यह है कि आभूषण से रहित सुन्दरों का मुख अपने प्रिय को अच्छा नहीं लगता है–

''न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्''।।

इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए परवर्ती रीतिकालीन आचार्य केशवदास ने लिखा है–

किन्तु ध्वनि सिद्धान्त की पूर्ण प्रतिष्ठा होने पर काव्य में अलड. कारों की सत्ता नितान्त आवश्यक अथवा अपरिहार्य नहीं रही। आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट और आनन्दवर्धक से प्रेरणा प्राप्त कर अलड.कार का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – 'अलड. कार शब्द और कार्य अर्थ का अस्थिर धर्म हैंः वे अलड.कारों को केयूर की भांति शोभावर्द्धक तथा रस रूप आत्मा का उपकारक मानते हैं।

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ.कारस्तेऽङगादिवत्।।[7]

आचार्य विश्वनाथ के इस मन्तव्य का संक्षिप्त आशय यह है कि (1) अलङ्कार काव्य के अनिवार्य गुण नहीं हैं। वे अस्थायी धर्म हैं। (2) काव्य शोभा अलङ.कार पर निर्भर नहीं है, वह शोभा का कर्त्ता न होकर शोभा को वृद्धि ही करता हैं। (3) काव्य का सौन्दर्य है– रस। अलङ्कार का गौरव उसी का उपकार करने में है। इन मान्यताओं की स्थापना ध्वनिवादी आचार्यो ने की। इन आचार्यो ने आत्मस्थानीय ध्वनि को केन्द्र बिन्दु मानकर गुण, रीति और अलंकार आदि पर भी विचार किया था। तदनुसार ''बाह्य प्रसाधन कटक–कुण्डल आदि की तरह शब्दार्थ रूपी काव्य–शरीर के शोभातिशायी रूप में अलंकारों को मान्यता दी। पूर्व–ध्वनि–काल में अलंकार शोभाकारक था, अब वह शोभावर्द्धक माना गया। पूर्व में गुण भी अलंकार के सामान्य रूप में परिगृहीत था, पर अब वह अंगी रसादि का आश्रित होकर स्वतन्त्र तथा अलंकार के प्रधान हो गया और अलंकार अंगाश्रित होने से अप्रधान माना गया। अलंकार का महत्त्व, जो पूर्व में अपने आप में था, अस्वीकृत हो गया और ध्वनिकाल में रसादि के उत्कर्षक होने में ही उसका महत्त्व माना गया। परवर्ती–काल में राजशेखर, हेमचन्द्र, विद्याधर, विद्यानाथ, रूद्रभट्ट, द्वितीय वागभट्ट, विश्वनाथ, भानुदत्त मिश्र, केशव मिश्र, अप्पय दीक्षित, जगन्नाथ, विश्वेश्वर आदि आचार्यों ने आनन्दवर्द्धन और मम्मट की मान्यता का पूर्णतः अनुकरण किया है। हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने इस विषय में संस्कृत के आचार्यों का पूर्णतः अनुकरण किया है। आचार्य केशव अलंकारहीन कविता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं। यही नही, वे न तो वामन के समान काव्य की प्रतिष्ठा अलंकार पर मानते है और न अलंकारहीन कविता को निष्प्राण ही मानते है। उन्हें तो कभी–कभी बाह्य श्रृंगार सौन्दर्य का अपकर्षक प्रतीत होता है। आधुनिक आचार्यों में रामचन्द्र शुक्ल ने अलंकार को कथन की रोचक, सुष्ठु और प्रभावपूर्ण प्रणाली माना है 'मैं अलंकार को केवल वर्णन प्रणाली मात्र समझता हूँ, जिसके अन्तर्गत चाहे किसी वस्तु का वर्णन किया जा सकता है। अन्यत्र एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि– अलंकार है क्या ? वर्णन करने की अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण शैलियाँ जिन्हें काव्यों में चुनकर प्रचीन आचार्यों ने नाम रखे हैं और लक्षण बनाये। ये शैलियाँ न जाने कितनी हो सकती है, अतः नहीं कहा जा सकता कि जितने अलंकारों के नाम ग्रन्थों में मिलते है उतने ही अलंकार हो सकते हैं। भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी–कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है।

''अलंकार सम्प्रदाय के अनुसार प्रत्येक चमत्कार–पूर्ण उक्त काव्य पद की अधिकारिणी है और प्रत्येक काव्योक्ति में चमत्कार अनिवार्यतः विद्यमान रहता हैं। किन्तु रसवादी आचार्यों की मान्यता इनसे भिन्न है। उनका कहना है कि न तो प्रत्येक चमत्कार उक्ति ही काव्य हो सकती है और न प्रत्येक काव्योक्ति में ही चमत्कार अनिवार्यतः वर्तमान रहता है। आधुनिक युग के रसवादी आचार्यों में उक्ति–चमत्कार अथवा सूक्ति को काव्य का पद तो दिया हो नहीं है अपितु उसकी निन्दा भी की है, उनका स्पष्ट मत है कि ''भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप–गुण और क्रिया को अधिक तीव्र अनुभव कराने में 'कभी–कभी' सहायक हो वाली उक्ति अलंकार है।'' मम्मट के 'अनलंकृतीः पुनः क्वापि' का आशय स्पष्ट है कि रसवादी आचार्य न तो रसानुभूति से शून्य कोरे अलंकार को काव्य मानते है और न उनकी स्थिति ही काव्य में अनिवार्य मानते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. काव्यप्रकाश – 382/16।
2. भामह – 1/36।
3. ध्वन्यालोक–2/9।
4. वक्रक्तिजीवित –1/6।
5. काव्य प्रकाश 1/66।
6. चन्द्रालोक–1/8।
7. साहित्यदर्पण–10/1।